विपश्यना

साधकों का मासिक प्रेरणा पत्र

बुद्धवर्ष २५४७, चैत्र पूर्णिमा, ५ अप्रेल, २००४ वर्ष ३३ अंक १०

धम्मवाणी

उय्युञ्जन्ति सतीमन्तो, न निकेते रमन्ति ते।
हंसाव पल्ललं हित्वा, ओकमोकं जहन्ति ते॥

धम्मपद – ९१.

स्मृतिमान उद्योग करते रहते हैं, वे घर में रमण नहीं करते। जैसे हंस क्षुद्र जलाशय को छोड़ कर चले जाते हैं, वैसे ही वे घर-बार (अथवा, सभी ठौर-ठिकानों को) छोड़ देते हैं।

[धारण करे तो धर्म]

आंतरिक बाधाएं

(जी-टीवी पर क्रमशः चौवालीस कड़ियों में प्रसारित पूज्य गुरुदेव के प्रवचनों की सत्ताईसवीं कड़ी)

विपश्यना का अंतर्तप कितना सरल है! बस, साक्षीभाव से जानना है। तटस्थभाव से जानना है। करना-करानाकुछनहीं। सांस से काम शुरू करते हैं तो सांस की कसरत नहीं करते। उस पर कोई नियंत्रण नहीं करते। सहजभाव से अपने आप जैसे सांस आ रहा है, जैसे जा रहा है; दृष्टाभाव से, साक्षीभाव से केवल जानना है और कुछ नहीं करना। इसी प्रकार जब अंतर्मुखी होकर के सारे शरीर की यात्रा करेंगे तो करना कुछ नहीं; जो कुछ हो रहा है, उसे साक्षीभाव से जानना है। प्रयासरहित साक्षीभाव और इच्छारहित साक्षीभाव। हम चुनाव नहीं कर सकते। अब ऐसी संवेदना होगी तो देखेंगे अथवा वैसी संवेदना चाहिए, ऐसा कुछ नहीं है। जैसा है, "जब जैसा तब तैसा रे", जब जैसा हो, उसको वैसे ही जान लिया। जो जैसा है, उसको वैसे ही जान लिया। इतना सरल। इसके मुकाबले जब किसी का बाह्य तप देखते हैं तब लगता है अरे, इतना कठिन! जैसे कोई व्यक्ति बड़ा उग्र तप कर रहा है। महीने भर का व्रत लिया, महीने भर का उपवास किया, दो महीने का उपवास किया। सूखकर कांटा हो गया। अरे, कितना कठिन! कितना कठिन!! कोई खड़ा है तो महीनों खड़ा है। वह भी दो टांग पर ही नहीं, एक टांग पर खड़ा है। अरे, कितना कठिन, कितना कठोर तप! उसके मुकाबले तो यह बहुत आसान है, बहुत सरल है।

लगता है सरल, पर जब कभी दस दिन के शिविर में आकर के करना शुरू करोगे, तब पता चलेगा कि यह भी कितना कठिन है। बहुत कठिन है, अंतर्तप बहुत कठिन है। काम कुछ नहीं करना। जो हो रहा है उसे जानना है। फिर भी बहुत कठिन है! बहुत-सी कठिनाइयां आती चली जाएंगी। लेकिन इन कठिनाइयों का आना हमारे लिए कल्याण की बात होगी। सीखेंगे, कठिनाइयों का सामना कैसे किया जाय। जैसे एक टांग पर खड़ा हुआ आदमी सीखता है। उसे पीड़ा तो होती है पर सीखता है; खड़ा रहना है तो खड़ा रहना है। बाह्य तप का वह एक तरीका है और यह भीतर सीखता है। इसीलिए कहते हैं बड़ा परिश्रम करना पड़ेगा, बड़ा पुरुषार्थ करना पड़ेगा, बड़ा पराक्रम करना पड़ेगा। बाहर-बाहर से सुनने में तो यूं लगता है, क्या पुरुषार्थ है इसमें? जो हो रहा है उसे देखना है। कोई प्रयास नहीं, कोई परिश्रम ही नहीं करना। अपने आप हो रहा है, हम थोड़े ही कर रहे हैं। कर्त्ताभाव समाप्त। भोक्ताभाव समाप्त। बस, दृष्टा हैं हम तो। तटस्थभाव से नदी के किनारे बैठे हैं, तट पर बैठे हैं। नदी बह रही है, उसको देख रहे हैं। इसमें क्या कठिनाई? करने आओगे तब देखोगे कि अनेक तरह की बाधाएं आएंगी। कुछ बाधाएं तो काम शुरू करते ही आनी शुरू हो जाती हैं।

ध्यान करने बैठा है, ऐसा एक दुश्मन सिर पर सवार हो गया – राग ही राग जगता है, कामनाएं ही कामनाएं जगती हैं। विचार चलता है – यह चाहिए, वह चाहिए, ऐसा हो जाय, वैसा हो जाय। अरे, राग निकालने के लिए आये भाई, और राग ही राग, राग ही राग। या कभी ऐसा विचार चलता है कि द्वेष ही द्वेष, द्वेष ही द्वेष। उसने मेरा यह कर दिया, ऐसा बदला लूंगा, ऐसा प्रतिशोध करूंगा। यह बदला लूंगा, यह करूंगा, यह करूंगा। प्रतिशोध, प्रतिहिंसा; प्रतिशोध, प्रतिहिंसा। द्वेष ही द्वेष; द्वेष ही द्वेष।

एक और प्रकार का द्वेष जागता है, एक और प्रकार का राग जागता है। अनेक लोगों के साथ ध्यान करने बैठा है और कहा गया कि आंख मत खोलना। आंखें खोल करके रखोगे तो बहिर्मुखी हो जाओगे ना! बाहर के आलंबनों पर ध्यान जाएगा। तुम्हें तो तुम्हारे भीतर की सच्चाई को जानना है। तो आंखें बंद। आंख बंद करके बैठा है कि थोड़ी देर बाद पीड़ा शुरू हुई। पांव में पीड़ा शुरू हुई, हाय रे, मरा रे, इतनी तेज पीड़ा है रे! इतनी तेज पीड़ा है रे! तो रहा नहीं जाता। मनुष्य स्वभाव तो 'मनुष्य स्वभाव', औरों को क्या हो रहा है? यह देखने की बड़ी उत्कंठा है। तो थोड़ी-सी आंख खोल करके देख लेता है। साथ चार-पांच सौ लोग बैठे हैं। जिस पर नजर जाती है वही बुद्ध की मूर्ति की तरह बैठा है, महावीर की मूर्ति की तरह बैठा है। अरे तो इनको दर्द नहीं होता? मुझे ही दर्द हो रहा है। अरे मेरा दर्द अब तक नहीं गया रे! मेरा दर्द नहीं गया रे! और द्वेष ही द्वेष। इस दर्द के प्रति इतना द्वेष, इतना द्वेष। अब तक नहीं गया रे! अब तक नहीं गया रे! यह मार्गदर्शक बार-बार कहते हैं कि जो कुछ उत्पन्न हो रहा है, नष्ट होने के लिए हो रहा है। सब अनित्य है, सब नश्वर है, सब भंगुर है। भाई होगा सब कुछ अनित्य। मेरा यह दर्द तो अनित्य नहीं है। देखो जाता ही नहीं। देखो, जाता ही नहीं। यों द्वेष ही द्वेष जगाये जा रहा है। अरे, तू क्या करने आया! तू अपने द्वेष के स्वभाव को बदलने के लिए आया ना! क्या करे बेचारा! द्वेष का स्वभाव इन गहराइयों तक जड़ों में समाया हुआ है कि कोई बहाना चाहिए उसे। फिर जागेगा। कोई बहाना चाहिए, फिर जागेगा। बीच-बीच में होश आयेगा, अरे भाई, हमें तो बताया गया देखना है। पीड़ा हुई है तो क्या हुआ, देख ना! जैसे डाक्टर आकर के मरीज की जांच करता है कहां पीड़ा है? यहां पीड़ा है, यहां

पीड़ा है। उसको तो पीड़ा नहीं है ना। जांच करता है। अरे, ऐसे ही इस शरीर की जांच कर! पीड़ा कहां है? कहां ज्यादा है, कहां कम है? यों साक्षीभाव से उसे देख। थोड़ी देर देखता है, फिर होश खो देता है। द्वेष फिर सिर पर सवार हो जाता है। अरे मेरी पीड़ा तो अब तक नहीं गयी रे! मेरी पीड़ा तो अब तक नहीं गयी रे! तो द्वेष ही द्वेष। एक बड़ा दुश्मन सिर पर सवार हो गया।

साधक से बार-बार कहा जाता है, बहुत सजग रहना। ऐसा कोई दुश्मन सिर पर सवार न हो जाय। हो गया तो उसे जल्दी से जल्दी दूर करो। इसी तरह जब राग का दुश्मन सवार होता है, तब बहुत व्याकुल बनाता है। शिविर में आते हीए कहते हैं, भाई, मौन रहना चाहिए। बातें करोगे तो फिर बहिर्मुखी हो जाओगे। जो बात करोगे, ध्यान में बैठने पर वही सारी बातें आती रहेंगी। इसलिए बिल्कुल मौन, बिल्कुल मौन। फिर भी नहीं रहा जाता। बड़ी उत्सुकता है कि औरों को क्या हो रहा है? तो धीरे से किसी से पूछ लेता है या अपने निवास स्थान पर जाता है तब पूछ लेता है, तुम्हें कैसा हुआ? और वह कहता है, मुझे तो झनझनाहट हुई। सारे शरीर में झनझनाहट ही झनझनाहट। कोई कहता है मुझे तो सारे शरीर में इलेक्ट्रिक का-सा करेंट चला। इतना आनंद, इतना आनंद कि पूछो मत! अब देखो, बैठते ही अरे, मुझे तो झनझनाहट हुई ही नहीं। अरे, मुझे तो यह बिजली का-सा करेंट आया ही नहीं। मुझे तो आनंद आया ही नहीं। अरे वह झनझनाहट चाहिए रे! यह बिजली का सा करेंट चाहिए रे! यह आनंद की धारा चाहिए रे! अब रोये जा रहा है, यह चाहिए रे! चाहिए रे का दुश्मन सिर पर सवार हो गया ना। आये थे राग निकालने के लिए और साधना का काम करते हुए साधना के नाम पर ही और राग बढ़ा रहे हैं और राग बढ़ा रहे हैं। फिर मार्गदर्शक कहता है, सोच भाई, तू किस उद्देश्य से आया है? निकालना है ना इसे?

"आपेआपि निरंजनु सोइ", जो अपने आप प्रकट हो, उसको स्वीकार कर। तेरा कोई ऐसा विकार है जो पीड़ा के रूप में निकलने वाला है पीड़ा के रूप में उसकी उदीर्णा हुई है। निकल जाएगा, हल्के हो जाओगे, बात खत्म हो जाएगी। जब समय आएगा, झनझनाहट आएगी तो झनझनाहट स्वीकार कर लेना। कोई करंट दौड़ेगा तब उसे स्वीकार कर लेना। कोई धाराप्रवाह अनुभूति होगी तब उसे स्वीकार कर लेना। जो होगा उसे स्वीकार करना। जो नहीं हो रहा है उसकी खोज करता है, उसकी कामना करता है, उसकी कल्पना करता है और जो हो रहा है उसकी उपेक्षा करता है, उसको महत्त्व नहीं देता। उसको साक्षीभाव से देखता नहीं। फिर होश जागता है, हां, मैं तो यह करने आया –इस समय जो हो रहा है। इस क्षण जो सच्चाई प्रकट हुई, मेरे शरीर के बारे में, मेरे चित्त के बारे में; इन दोनों की मिली-जुली धारा के बारे में जो सच्चाई प्रकट हुई उसे साक्षीभाव से देखना है, तटस्थभाव से देखना है। यों अपने इन दोनों दुश्मनों से लड़ते-लड़ते इन पर विजय प्राप्त करनी है। तो बड़ी मेहनत का काम है, परिश्रम का काम है। बार-बार दुश्मन सिर पर सवार होता है, बार-बार उसे हराना पड़ता है, उसे दूर करना पड़ता है। फिर सिर पर सवार होता है, फिर दूर करना पड़ता है। इसी को पराक्रम कहा। बड़ा पराक्रम है, बड़ा पुरुषार्थ है, बड़ी मेहनत है।

दो तरह के दुश्मन सिर पर सवार होने लगते हैं। ये दुश्मन और कोई नहीं, हमारे भीतर के विकार हैं जो मेहमान की तरह हमारे भीतर आये थे और अब घर के मालिक हो गये। नहीं निकलना चाहते और यह भी खूब समझ गये हैं कि यह आदमी विपश्यना करता जाएगा तो हमें बाहर जाना पड़ेगा। हम तो घर के मालिक हैं, नहीं जाते। भीतर से दुलत्ती लगाते हैं, बंद कर यह काम। हमें नहीं अच्छा लगा। यह क्या करने लगा?

एक और दुलत्ती यह लगती है कि बहुत आलस्य आता है। बड़ा प्रमाद छाता है। बड़ी नींद आती है। रात को खूब गहरी नींद सोया है। नींद की जरूरत नहीं है लेकिन फिर भी ध्यान करने बैठा कि नींद आने लगी, आलस्य आने लगा। इस दुश्मन से भी लड़ना है। यह सिर पर सवार हो जाएगा तो भीतर से सजग कैसे रहेंगे, सचेत कैसे रहेंगे, सावधान कैसे रहेंगे? भीतर की सच्चाई को यथाभूत कैसे देख पाएंगे? इसको सिर पर चढ़ने नहीं देना। साधकों को समझाया जाता है कि जब-जब ऐसा होने लगे, तब-तब सांस को जरा तेज कर लो, और यदि वह एक घंटे की बैठक न हो तो दो-चार-पांच मिनट के लिए खड़े हो जाओ। दो-चार-पांच मिनट के लिए चलो। और कुछ नहीं तो अपनी आंख पर ठंडा पानी डालो। इस दुश्मन से लड़ाई करो। इसको सिर पर चढ़ने मत दो। चढ़ गया तो जल्द से जल्द उतारो। इसी को कहते हैं बड़ा पुरुषार्थ करना पड़ता है, बड़ा पराक्रम करना पड़ता है।

एक और दुश्मन है। काम करते-करते यह दुलत्ती लगी तो भीतर से कि बड़ी बेचैनी, बड़ी अशांति मालूम होने लगी। कुछ काम करने को जी नहीं चाहता। साधना करने को जरा भी जी नहीं चाहता। बस, जी चाहता है कि उससे जरा-सा बतिया लूं, जरा-सा पढ़ लूं, जरा-सा लिख लूं। ये कपड़े धो लूं या नहा लूं। यह कर लूं, वह कर लूं, सब कुछ कर लूं पर साधना नहीं करूं, ध्यान नहीं करूं। सारा दिन इसी में बिता देता है। बड़ा बेचैन, बड़ा अशांत, और शाम को होश आता है, अरे! आज का दिन तो मैंने ऐसे ही खो दिया! अरे, इतना कीमती दिन! यहां दस दिन के लिए तो आया, इतना काम करना है और आज का दिन यूं ही खो गया। तो रोता है, व्याकुल होता है, पश्चाताप करता है। धर्म में रोने को जगह नहीं। धर्म में पश्चाताप को जगह नहीं। न पूर्वाताप, न पश्चाताप। गलती हुई, अपने किसी बड़े के पास जाकर के गलती स्वीकार कर ली। गलती का न्यायीकरण करते चले जाएंगे, उसकी जस्टिफिकेशन करते चले जाएंगे तो बार-बार गलती करते ही चले जाएंगे, उसके बाहर निकलेंगे नहीं। गलती हुई है। मुझसे आज भूल हुई। सारा दिन मैंने निकम्मी बातों में खो दिया। जो काम करना था सो किया नहीं। तो अपने किसी मार्गदर्शक के सामने जाकर स्वीकार कर लिया और उसके सामने यह दृढ़-प्रतिज्ञा की कि अब ऐसा नहीं होने दूंगा। यह दुश्मन जो मेरे सिर पर चढ़ा है, इसको फिर नहीं चढ़ने दूंगा। बेचैनी चाहे जितनी आये, मैं अपना काम बंद नहीं करूंगा, बेचैनी अपने आप भाग जाएगी। बेचैनी है, इसे भी देख रहे हैं कि बेचैनी है और बेचैनी है तो संवेदना कैसी है? शरीर पर अनुभूति कैसी हो रही है? मन में बेचैनी है, शरीर पर क्या हो रहा है? दोनों को साक्षीभाव से देखते हैं। देखते-देखते इन बेचैनियों की भी परतें उतरती चली जाएंगी, उतरती चली जाएंगी, सारी बेचैनी खत्म। सारी अशांति खत्म।

अरे, इतना सरल मार्ग पर काम करने से होगा ना! काम नहीं करोगे तो कैसे होगा? तो निर्णय करता है, अब मैं ठीक से काम करूंगा, परिश्रमपूर्वक करूंगा। बस, पश्चाताप नहीं, रोना नहीं। अरे, बीज बोयेंगे रोने के और रोते ही जाएंगे। मुझसे यह गलती हो गयी, यह गलती हो गयी तो अपराध की ग्रंथि को बढ़ावा मिलने लगा। गलती हो गयी और अब रो रहा है तो रोने के ही बीज डाल रहा है ना! बीज रोने के डालेगा तो फल रोने का ही आने वाला है! बीज रोने का डालेगा तो फल हँसने वाला कैसे आयेगा? अरे, प्रकृति लिहाज नहीं करती रे! वह इस बात को भी नहीं देखती कि यह बेचारा क्यों रो रहा है? इसका रोना तो स्वाभाविक है, कुछ नहीं देखती। रोया है ना! तो चित्त की चेतना कैसी है? रोने की है तो रोने का ही फल आयेगा। धर्म के क्षेत्र में रोने को जगह नहीं, पश्चाताप को जगह नहीं। गलती स्वीकार की, भविष्य में फिर नहीं करेंगे, इस दृढ़ निश्चय के साथ काम में लग जाएंगे तो यह दुश्मन भी

सिर पर नहीं चढ़ेगा। न बेचैनी का दुश्मन चढ़ेगा, न यह रोने-पीटने का, व्याकुलहोने का,पश्चाताप करनेवाला दुश्मन चढ़ेगा।

पर एक और दुश्मन है और वह बहुत पराक्रमी दुश्मन है। उन दिनों की पुरानी भाषा में कहा, **'विचिकिच्छा'**। शक होता है, संदेह होता है। अरे बाबा, यह क्या करने लगा! यह भी कोई साधना हुई? दो हजार वर्षों से अपने देश में लुप्त हुई। और लुप्त भी ऐसी हुई कि कुछ वर्ष पहले तक तो लोग इसका नाम ही नहीं जानते थे। मैं भी चालीस-पैतालीस वर्ष पहले अपने गुरु के पास यह विद्या सीखने के लिए गया तो उन्होंने कहा, तुम्हारे भारत की विद्या तुम्हें सिखाएंगे। 'विपश्यना' सिखाएंगे। यह विपश्यना क्या है? अपने भारत की भाषाओं से यह शब्द ही गायब हो गया। घर आकर के हिंदी की डिक्शनरी देखी, उसमें 'विपश्यना' शब्द नहीं। उस समय संस्कृत की जो डिक्शनरी मेरे पास थी उसे देखा, उसमें भी 'विपश्यना' शब्द नहीं। अरे, अपने देश की भाषाओं से शब्द ही लुप्त हो गया तो विद्या तो लुप्त होनी ही थी। आज बिल्कुल नयी जैसी लगती है। जब कोई आजमाने के लिए आता है कि ये क्या कर रहे हैं तब उसके मन में शक उठता है, संदेह उठता है –सांस को देखो, सांस को देखो। क्या देखें सांस को? सांस का प्राणायाम होता तो शरीर ही स्वस्थ होता। यह स्वाभाविक सांस को क्या देखें? इसके साथ कोई नाम जोड़ते। किसी का भी नाम जोड़ देते, तो भी कल्याण होता। नाम भी मत जोड़ो, किसी मूरत का भी ध्यान मत करो। किसी रूप का भी ध्यान मत करो। केवल सांस! क्या कर रहे हैं?

और फिर क्या करने लगे? शरीर को देखो! यह शरीर अनित्य है, नश्वर है। इसे तो हम खूब जानते हैं। अनित्य है, नश्वर है। इसमें देखने की क्या बात हुई? यह भी कोई बात हुई? इसे तो खूब जानते हैं। जानता-वानता कुछ नहीं। केवल मानता है। अरे, जानने का ही तो काम करवाते हैं ना! सच्चाई को अनुभूतियों से जान, तब जानना हुआ। लेकिन मन में यही बाता आती है कि खूब जानता हूं। इसको क्या देखें? अरे, दर्शन ही करना है तो इस मिट्टी के शरीर को क्या देखें? नश्वर शरीर को क्या देखें? किसी आत्मा के दर्शन कराते, किसी परमात्मा के दर्शन कराते। किसी राम के दर्शन कराते, किसी अल्लाह के दर्शन कराते। अरे, बुद्ध के ही दर्शन कराते, महावीर के ही दर्शन कराते, तब भी कोई बात होती। इस शरीर का क्या दर्शन? कर क्या रहे हैं? बेचारे के मन में शक ही शक; संदेह ही संदेह।

फिर आकर पूछता है, बात को समझता है। अरे, विकारों का दर्शन करना है ना भाई! हमें विकारों से छुटकारा पाना है ना! अपने मन का दर्शन करना है और मन का शरीर से गहरा संबंध है। इसलिए शरीर का दर्शन कर रहे हैं। यह शरीर के प्रति आसक्त होकर दर्शन नहीं कर रहे हैं। अपना खूब बढ़िया मेक-अप किया और दर्पण के सामने मुँह देखता है, देख! मैं कितना खूबसूरत हूं? देख कितना रूपवान हूं मैं? वह दर्शन पागलों वाला दर्शन। अरे, वह नहीं करवा रहे ना!

शरीर के भीतर क्या हो रहा है, क्या अनुभूति हो रही है? उस अनुभूति की वजह से क्या विकार जाग रहे हैं? इसलिए जाग रहे हैं कि मुझे होश नहीं है। उसको अच्छा मान करके राग जगाता हूं, बुरा मान करके द्वेष जगाता हूं। इस स्वभाव को पलटना है। तो मानस क्या कर रहा है? कैसे राग जगा रहा है, द्वेष जगा रहा है और शरीर पर क्या प्रकट हो रहा है? अरे, विकारों से छुटकारा पाना है ना!

कोई कहे कि मुझे अपने कमरे को साफ करना है। बहुत मैला हो गया। और यहीं बैठे हुए उस कमरे की कल्पना करूं, ऐसा कमरा है मेरा और उसमें इस तरह से कचरा है और वह सारा कचरा निकाल रहा हूं, निकल रहा है, निकल रहा है। अरे, जहां कचरा है, वहां तक गया ही नहीं। पहले वहां पहुँच और उसको निकाल, तब तो सही माने में निकलेगा। यह सारा कूड़ा-कर्कट तो भीतर है ना भाई! तेरे मानस में है ना और मानस की भी गहराइयों में है ना! उसे निकालना है तो वहां तक पहुँच होनी चाहिए। इसलिए अंतर्मुखी होकर के वहां तक पहुँचते हैं, जहां विकारों का संचयन है, संग्रह है। कितना इकट्ठा कर रखा है! कितने जन्मों के, कितने कर्म-संस्कार इकट्ठे कर रखे हैं और उनकी वजह से भीतर एक स्वभाव-शिकंजा बन गया। उस स्वभाव-शिकंजे में इस कदर जकड़े हुए हैं, इस कदर जकड़े हुए हैं, उसे तोड़ना है। नहीं तो उस बिहेवियर-पैटर्न में सारा जीवन बीत जाएगा। उसके बाहर कैसे निकलेंगे? उस बिहेवियर-पैटर्न तक पहुँच कर के तब उसको तोड़ना शुरू करेंगे। उस शिकंजे तक पहुँच करके तब उसको तोड़ना शुरू करेंगे। उस कैदतक पहुँच करके उस कैद को तोड़ना शुरू करेंगे। इसलिए अंतर्मुखी होकर के शरीर और चित्त का निरीक्षण कर रहे हैं।

..... क्रमशः

धम्मनासिका, नाशिक विपश्यना केंद्र पर पूज्य गुरुजी का पदार्पण

पूज्य गुरुजी आगामी शनिवार, २४ अप्रैल, २००४ को निर्माणाधीन विपश्यना केंद्र 'धम्मनासिका' पर पधारेंगे, जहां सायं ५:३० से ६:०० बजे तक पुराने साधकों की सामूहिक साधना होगी और तत्पश्चात प्रश्नोत्तर सत्र होगा। अधिक जानकारी के लिए कृपया संपर्क करें – फोन: ०२५३-२३४७९०८, २३१२२८४, ९८२२५-१३२४४, ९८२२५-४८८२२.

विपश्यना पत्र के स्वामित्व आदि का विवरण

समाचार पत्र का नाम : **"विपश्यना"**
भाषा : हिंदी
प्रकाशन का नियत काल : मासिक (प्रत्येक पूर्णिमा)
प्रकाशन का स्थान : विपश्यना विशोधन विन्यास, धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२४०३.
मुद्रक, प्रकाशक एवं संपादक का नाम : राम प्रताप यादव
राष्ट्रीयता : भारतीय
मुद्रण का स्थान : अक्षरचित्र, बी-६९, सातपुर, नाशिक-७.

पत्रिक के मालिक का नाम : विपश्यना विशोधन विन्यास,
(रजि. मुख्य कार्यालय):
ग्रीन हाऊस, २ रा माला,
ग्रीन स्ट्रीट, फोर्ट, मुंबई-४०००२३.
मैं, राम प्रताप यादव एतद् द्वारा घोषित करता हूं कि ऊपर दिया गया विवरण मेरी अधिकतम जानकारी और विश्वास के अनुसार सत्य है।

राम प्रताप यादव,
मुद्रक, प्रकाशक एवं संपादक
दि. २८-३-२००४.

महत्त्वपूर्ण सूचनाः (जिसने मासिक पत्रिका का शुल्क जमा नहीं किया है उसी के लिए केवल)

भावी शिविर-कार्यक्रमों की जानकारी और दैनिक साधना में प्रगति के लिए प्रेरणास्रोत 'विपश्यना' पत्रिका सभी नये साधकों को कुछ समय तक विशेष सुविधा के रूप में प्रेषित की जाती है। यदि आप चाहते हों कि यह आप को २००३ में नियमित मिलती रहे तो कृपया इस भाग को काटकर पीछे चिपकाए पते सहित हमें लौटती डाक से वापस भिजवाएं। आप की ओर से कोई उत्तर न आने पर 'विपश्यना' के प्रति आप की अरुचि मानकर पत्रिका भेजना बंद कर देंगे। परंतु यदि आप 'विपश्यना' के प्रति रुचिवान हैं और किसी कारणवश शुल्क नहीं भेज सकते हों तब भी हम पत्रिका भेजते रहेंगे। आप चाहें तो आवश्यक शुल्क भेजकर इसके आजीवन या वार्षिक सदस्य बन सकते हैं। अतः कृपया निम्न अनुकूलबाक्स पर ✓ लगाकर सूचित करें–

❑ चाहिए ❑ अतिरिक्त प्रति/प्रतियां नहीं चाहिए ❑ रु. ५००/- (आजीवन शुल्क) या ❑ रु. ३०/- (वार्षिक शुल्क) भेज रहे हैं।

आवश्यकता है

विपश्यना विशोधन विन्यास, धम्मगिरि, इगतपुरी में **पालि** तथा **संस्कृत** (वैदिक एवं पाणिनी) के पंडितों की आवश्यकता है, जो कि हिंदी अनुवाद की क्षमता रखते हों। समुचित मानदेय एवं निवास की सुविधा उपलब्ध होगी। इच्छुक व्यक्ति कृपया व्यवस्थापक से संपर्क करें।

व्यवस्थापक

उत्तरदायित्व में परिवर्तन

आचार्य

१-२. श्री शेरसिंह एवं श्रीमती विमला कुमारी जैन, धम्मथली (जयपुर) के क्षेत्रीय आचार्य की सहायता और राजस्थान के जेल-शिविरों की सेवा

नए उत्तरदायित्व

वरिष्ठ सहायक आचार्य

१. श्री मधुसूदन प्रसाद, हैदराबाद
२. श्री एम. ए. शिवसुब्रमणियम, मदुराई
3. Mr. Van Shafer, U.S.A.

नए नियुक्तियां

1. Mr. Sigitas Baltramaitis, *Lithuania*
2. Mr. Christian & Mrs. Rosi Hild, *Switzerland*
3. Ms. Nancy Rosen, *Canada*

बाल-शिविर शिक्षक

१. श्री अनिल पंडरीनाथ माली, जलगांव
२. श्रीमती पुष्पा सुभाषचंद्र जवार, जलगांव
३-४. डॉ. दीपक एवं श्रीमती दीपा नारखेडे, जलगांव
५. श्री प्रकाश खेरनार, बुरहानपुर (म.प्र.)
६. सुश्री ज्योतिका शर्मा, भाटेछ (हि.प्र.)
७-८. डॉ. कृष्णा वासुदेवन एवं श्रीमती चित्रा कृष्णा, चेन्नई
९. सुश्री रुचि बजाज, चेन्नई
10. Mr. Jonathan Mirin &
11. Mrs. Godlieve Richard, *USA*
12. Mr. Adam Shepard &
13. Mrs. Rebecca Shepard, *USA*
14. Mr. Lee Roberts, *USA*
15. Mr. Jayde Lin-Roberts, *USA*
16. Ms. Laura Bruggeman, *USA*
17. Ms. Marta van Patten, *USA*
18. Mr. Eric Sedlacek, *USA*
19. Mr. Josh McEwen, *USA*

दोहे धर्म के

कारण तेरे दुःख के, भीतर ही हैं जान।
क्या तूं ढूंढे बावरा! बहिर्मुखी नादान॥

बिन जड़ उखड़े फूलती, फलती विष की बेल।
बिना अविद्या के मिटे, रहे दुःख ही झेल॥

न जाने जो स्वयं को, पर का करे बखान।
ज्ञान बोझ सिर पर धरे, मनुज बड़ा अनजान॥

नित्य मान इस जगत को, जो खोजे सुख भोग।
उस मूरख को सुख कहां? दुख का ही संयोग॥

भीतर अक्षय निधि भरी, मूढ़ देख ना पाय।
कस्तूरी के मृग सदृश, बाहर ही भटकाय॥

नन्हीं सी तृष्णा जगी, बनी गहन आसक्ति।
जब तक मन आसक्त है, कहां दुखों से मुक्ति?

मेसर्स केमिटो इंस्ट्रूमेंट्स (प्रा.) लि.
८, मोहता भवन, ई-मोजेस रोड,
वरली, मुंबई-४०० ०१८.
फोन: २४९३८८९३.
की मंगल कामनाओं सहित

दूहा धरम रा

त्रिस्णा रस मीठो लग्यो, लाग्यो घणो सुवाद।
पीतो ही पीतो गयो, लारै लागी ब्याध॥

बिसय रसां पर रीझ कर, परबस हुयो गुलाम।
चैन न दिन, ना रात है, चैन सुबह ना साम॥

त्रिस्णा मन मथती रवै, ब्याकुल जिवड़ो होय।
जो चावै सुख सांति तो, अपणै भीतर जोय॥

ओ री त्रिस्णा खोड़ली! किसींक लागी लार।
रोम रोम मँह रम गयी, सुख रो छूट्यो सार॥

त्रिस्णा बैरण भूतणी, चढी सीस दिन रैन।
आकुल ब्याकुल तन रवै, नहीं चित्त नै चैन॥

क्रिस्णा रो काट्यो बचै, पण त्रिस्णा रो नांय।
रग रग बिस ब्यापै इसो, मंतर काम न आय॥

एक साधक
की मंगल कामनाओं सहित

'विपश्यना विशोधन विन्यास' के लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादक: राम प्रताप यादव, धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२४०३, दूरभाष : (०२५५३) २४४०८६, २४४०७६.
मुद्रण स्थान : अक्षर चित्र प्रिंटिंग प्रेस, ६९- बी रोड, सातपुर, नाशिक-४२२००७. **बुद्धवर्ष २५४७, चैत्र पूर्णिमा, ५ अप्रेल, २००४**

वार्षिक शुल्क रु. ३०/-,विदेश में US $ 10, **आजीवन शुल्क** रु. ५००/-, " US $ 100. **'विपश्यना' रजि. नं. १९१५६/७१.** Regn. No. AR/NSK-46/2003-05

Licenced to post w**ithout Prepayment of postage** -- Licence number-- **AR/NSK-WP/3**
Posting day- Purnima of Every Month, Posted at **Igatpuri-422403,** Dist. Nashik (M.S.)

If not delivered please return to:-
विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरि, इगतपुरी - ४२२४०३
जिला-नाशिक, महाराष्ट्र, भारत
दूरभाष : (०२५५३) २४४०७६
फैक्स : (०२५५३) २४४१७६
Website: www.vri.dhamma.org
e-mail: info@giri.dhamma.org